आधुनिक परिप्रेक्ष्य के आधार पर समाज मे संत कबीर और संत रविदास के विचारों की प्रासंगिकता

डॉ० सचिन वर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
राजकीय महाविद्यालय, हसनपुर, अमरोहा, उत्तर प्रदेश, भारत

डॉ० राहुल कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर
राजकीय महाविद्यालय, हसनपुर, अमरोहा, उत्तर प्रदेश, भारत

डॉ० कौशल
असिस्टेंट प्रोफेसर
राजकीय महाविद्यालय, फतेहुल्लागंज, ठाकुरद्वारा, मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश
मुसलमानों के आगमन से हिन्दू समाज पर प्रभाव पड़ा, उन्होंने देखा कि मुसलमानों में द्विजों और शूद्रों का भेद नहीं है। सधर्मी होने के कारण वे सब एक हैं। अतएव इन ठुकराए हुए शूद्रों में से ही कुछ ऐसे महात्मा निकले जिन्होंने मनुष्यों की एकता को उद्घोषित करना चाहा। इस नवोस्थित भक्ति रंग में सम्मिलित होकर हिन्दू समाज में प्रचलित इस भेदभाव के विरुद्ध भी आवाज उठाई गई। रामानन्द जी ने सबके लिए भक्ति का मार्ग खोलकर उनको प्रोत्साहित किया। नामदेव, दरजी, रैदास चमार, दादू, धुनिया, कबीर जुलाहा आदि समाज की नीची श्रेणी के ही थे। परन्तु उनका नाम आज तक आदर से लिया जाता है। वर्णभेद से उत्पन्न उच्चता और नीचता को ही नहीं, वर्गभेद से उत्पन्न उच्चता नीचता को भी दूर करने का इस निर्गुण भक्ति से प्रयत्न किया। स्त्रियों का पद स्त्री होने के कारण नीचा न रह पाया। पुरुषों के समान वे भी भक्ति की अधिकारिणी हुई।

सार शब्दः हिन्दू समाज, द्विजों और शूद्रों, सधर्मी, भेदभाव, वर्णभेद, अधिकारिणी आदि।

प्रस्तावना

मुसलमानों के आगमन से हिन्दू समाज पर प्रभाव पड़ा, उन्होंने देखा कि मुसलमानों में द्विजों और शूद्रों का भेद नहीं है। सधर्मी होने के कारण वे सब एक हैं। अतएव इन ठुकराए हुए शूद्रों में से ही कुछ ऐसे महात्मा निकले जिन्होंने मनुष्यों की एकता को उद्घोषित करना चाहा। इस नवोस्थित भक्ति रंग में सम्मिलित होकर हिन्दू समाज में प्रचलित इस भेदभाव के विरुद्ध भी आवाज उठाई गई। रामानन्द जी ने सबके लिए भक्ति का मार्ग खोलकर उनको प्रोत्साहित किया। नामदेव, दरजी, रैदास चमार, दादू, धुनिया, कबीर जुलाहा आदि समाज की नीची श्रेणी के ही थे। परन्तु उनका नाम आज तक आदर से लिया जाता है।

वर्णभेद से उत्पन्न उच्चता और नीचता को ही नहीं, वर्गभेद से उत्पन्न उच्चता नीचता को भी दूर करने का इस निर्गुण भक्ति से प्रयत्न किया। स्त्रियों का पद स्त्री होने के कारण नीचा न रह पाया। पुरुषों के समान वे भी भक्ति की अधिकारिणी हुई। रामानंदजी के शिष्यों में से दो स्त्रियाँ थीं, एक पदमावती और दूसरी सुरसुरी। आगे चलकर सहजोबाई और दयाबाई भी भक्तसंतों में से हुई। स्त्रियों की स्वतंत्रता के परम विरोधी, उनको घर की चहारदीवारी के अंदर ही कैद रखने के कट्टर पक्षपाती तुलसीदास जी भी जो मीराबाई को 'राम विमुख तजिय कोति बैरी सम यद्यपि पर स्नेही' का उपदेश दे सके, वह निर्गुण भक्ति के ही अनिवार्य और अलक्ष्य प्रभाव के प्रसाद से समझना चाहिए।[1]

सन्त कबीर भी ऐसे ही महापुरुषों में से एक हैं। जब हिन्दू–मुस्लिम अपने–अपने धर्म की श्रेष्ठता को लेकर टकराव के कगार पर खड़े थे, उसमय की पुकार को देखते हुए उन्होंने दोनों धर्मो के रुढ़िवादी स्वरूप पर चोट की। हिन्दुओं की मूर्तिपूजक कट्टरता का विरोध करते हुए उन्होंने कहा था–पाथ पूजे हरि मिले. तो मैं पूजूं पहाड़। इसी प्रकार मुस्लिम कट्टरता को नकारते हुए उन्होंने कहा था कि अजान देने से क्या खुदा सुनता है। उनका कहना था–

कांकर पाथर जोरि के मस्जिद लई बनाय।
ता चढ़ मुल्ला बांग दे क्या बहिरा हुआ खुदाय।।[2]

इसी प्रकार तीर्थ स्थानों पर नदियों में स्नान से ब्राह्मण मोक्ष की प्राप्ति बताते हैं। कबीर ने कहा कि जब तक मन की गंदगी दूर नहीं होती है तब तक नदियों के स्नान से कोई लाभ नहीं, क्योंकि मछली सदा नदी के पानी में रहते हुए भी इस में बास आती है। जो शुद्ध जल से धोने पर भी समाप्त नहीं होती है।

न्हाये धोये क्या भया जो मन मैल न जाय।
मीन सदा जल में रहे धोयें बास न जाय।।[3]

धर्म के नाम पर अधर्म करने वाले को उन्होंने इस प्रकार फटकारा है–

जीव बधत अरु धरम कहत है, अधरम कहां है भाई।
आपन तौ मुनि जन हवै बैठे, कासनि कहाँ कसाई।।[4]

स्पष्टता धर्म का लक्ष्य जीवन रक्षा करना है। किन्तु उसका वध करते हुए धार्मिक कहलाना तो न्यायोचित नहीं है।

कबीर के समय के समाज में भी जाति के आधार पर ऊँच–नीच के भेदभाव मौजूद थे। यही नहीं नीची या निम्न समझी जाने वाली जातियों में से अनेक को अछूत समझा जाता था और उसके स्पर्श ही नहीं, छाया तक को अपवित्र माना जाता था। इस संबंध में कबीर का मत बिलकुल स्पष्ट है। कबीर कहते हैं–

गरम बास महि कुल नहिं जाती।
ब्रह्म बिंदु ते सभु उतपाता।।
कहुरे पंडित बामन कब के होए।
बामन कहि कहि जनमु मत खोए।।
जो तू ब्राह्मण बमनी जाय।
तो आन बाट काहे नहीं आया।।
तुम कत ब्रह्मण हम कत सूद।
हम कत लोहू तुम कत दूध।।
कहु कबीर जौ ब्रमहु बीचारै।
सो ब्राह्मन कहीअतु है हमारे।।[5]

अभिप्राय है कि जन्म के आधारपर जाति का विचार गलत है। यदि जाति का संबंध जन्म से होता, तो इसके प्रमाण गर्भ से ही मिलने लगते। यदि ब्राह्मण श्रेष्ठ होता तो वह गर्भ से ही वेद पढ़ कर जाता, पैट न काहू वेद पढ़ाया।

पाखंडों पर प्रहार करते हुए संत कबीर कहते हैं कि बिना राम की भक्ति के कुछ भी सार्थक नहीं इसलिए लोक भक्ति के मार्ग पर भटक कर निराशा और असफलता ही प्राप्त करते हैं। मुक्ति और राम–मिलन के लिये जो हृदय में देखेगा उसे उसी में सब कुछ मिल जाएगा।

राम बिना संसार धुन्ध कुहेरा, सिरि प्रकटया जम का फेरा।
देव पूजि–पूजि हिन्दू मुए, तुर कमुए हज जाई।
जटा बांधि बांधि योगी मुए, इन में किन हूँ न पाई।
कवि कबीने कविता मुए, कापडत्री के दारौं जाई।
केस लचिमुए बरतिया, इनमें किनहूँ न पाई।
धन संचते राजा मए, अरु ले कंचन भारी।
वेद पढ़–पढ़ पंडित मुए, रूप भूल मुई नारी
जे नर जोग जुगति करि जानै, खोजें आप सरीरा
तिन हूं मुकति का संसा नाहीं, कहत जुलाहा कबीरा।।[6]

अहंकारी मानवों से कबीर कहते हैं कि– वेद, पुराण, स्मृति आदि धर्मग्रथ पढ़कर इस ईश्वर का रहस्य नहीं जाना जा सकता–

मन रे सद्रयो न एको लाजा, साये भज्यो न जगपति राजा।
वेद पुराण सुमत गुन पढ़ि–पढ़ि गनि मरम न पाया।
संध्या गाइत्री अरू भाट करमा, तिन थे दूरि बताया।[7]

गंगा, यमुना और गोदावरी आदि पवित्र नदियों को पवित्र मानकर उनके तट में निवास तथा स्थान की मान्यता उस युग में प्रतिष्ठित थी जो कि कबीर साहित्य में विरोध स्वर के रूप में प्रतिष्ठित है।

उलटि पवन भाटचक्र निवासी।
तीरथराज गंग तट वासी।।[8]

यदि मनुष्य अच्छे कार्य नहीं करता है तो उसका व्रत, उपवास करना व्यर्थ है। एकादशी व्रत का धर्म भी शुभ कर्म करना ही है।

एकादशी व्रत मर्म न जाने।
भूत व्रत हहि हृदय धरै।

तजि कपूर गांठी विष बांधै।
ज्ञान गमाये मुग्ध फिरे।।[9]

समाज में पर्दे की प्रथा थी उन्होंने पर्दा प्रथा का विरोध इन शब्दों में किया–घूंघट काढया सती न कोई अर्थात घूंघट काढ़ने से कोई सती नहीं हो जाती। आगे कहते हैं–

स्तबतिन को गजी मिलै नहि वैश्या पहिरे खासा है।
जेहि घर साधू भीरत न पावै भहुंआ खात बतासा है।।[10]

आशय यह है कि यदि मन पवित्र है तो वेश्या की पर्दाहीनता भी पूजनीय है।

प्रतिमा पूजन के कबीर घोर विरोधी थे। जिस परमात्मा का कोई आकार नहीं देशकाल का जिसके लिये कोई आधार आवश्यक नहीं, उसकी मूर्ति कैसी? जगह–जगह पर उन्होंने मूर्ति पूजा के प्रति अपनी अरुचि प्रदर्शित की है–

हम भी वाहन पूजते, होते वन के रोझ।
सतगुरु की किरिया भई, डारया सिर पे बोझ।।
सेवे सालिगराम कुँ मन की भ्रांति न जाई।
सीतलता सुमिनै नहीं, दिन–दिन अधकी लाई।।[11]

मूर्ति पूजा में भगवान की मूर्ति को जो भोग लगाने की प्रथा है उसकी वे इस तरह हँसी उड़ाते है–

लाडू लावर लापती पूजा चढ़े अपार।
पूजि पुजारा ले चला दे मुरति के मुख छाट।।[12]

उन्होंने मुसलमानों के भी ब्रह्मचार का खण्डन किया है। उनके वजू, नमाज, सुन्नत आदि के विरोध में उनकी अनेक उक्तियाँ उद्धृत की जा सकती है। उन्होंने मुसलमानों की हिंसा और जुल्म का खंडन किया है। खून बहाना और साथ ही मिसकीन (निरीह) कहलाना, कबीर की समझ में नहीं आता।

खून करै मिसकीन कहावै गुनही रहे छिपार। उनका कहा है कि दिल में ही में खोजो यहीं राम अथवा रहीम मिलेगा।

दिल महिं खोजि दिलै दिलि खोजहु इहई रहीनां रामा।[13]

वे सुन्नत और जनेऊ दोनों को त्रिम मानते हैं। कबीर ने अन्त्येष्टि संस्कार का उल्लेख कई बार किया है।

हाड़ जलै ज्यू लकड़ी, केस जलै ज्यूं घास।
सब तन जलता देखि करि, भया कबीर उदास।[14]

मृत्यु संस्कार के विधानों पर कबीर लिखते हैं–

जिन पूतन को बहुप्रतिपालयो, देवी देव गर्ने हैं।
सेई लै बोस दियो खोपरी में, सीस कोरि बिखरे हैं।[15]

कबीर की अभिव्यक्ति में अन्त्येष्टि संस्कार की महत्वपूर्ण क्रियाएँ स्पष्ट हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कबीर अपने युग में सार्वभौमिक न्याय के संस्थापक और मानव मात्र में मानवीय गुणों के सृजक होकर नैतिकता के प्रहरी के रूप में विश्व के सामने आते हैं। वे सर्वकालिक तथा सार्वजातिक न्यायाधीश जैसे प्रतीत होते हैं। किसी भी पाखंडी, अन्यायी और अत्याचारी को क्षमा नहीं करते। वे मेहनतकशों के हितैषी, सामाजिक न्याय की मांग करने वाले हैं। दास प्रथा के विरोधी, सर्वहारा वर्ग की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति करवाने वालों की पंक्ति का नेतृत्व करने वाले निष्ठावान सच्चे और समर्पित योद्धा के रूप में आज भी खड़े दिखाई देते हैं।

संत रविदास जी ने भक्ति और धर्म के क्षेत्र में समान अधिकार और सामाजिक समानता की बात कही है। उन्होंने मूर्ति पूजा और बहुदेववाद का अत्यन्त कठोर शब्दों में खण्डन किया है। उन्होंने एकमात्र ईश्वर की पूजा का उपदेश दिया है। रविदास का कहना है– हरि सा हीरा छोड़कर दूसरे अवतारों की आशा रखना मूर्खता है–

हरि सा हीरा छाडि के करी आन की आस।
ते नर दोजख जाहिगे सत भाषै रविदास।[16]

इसके अतिरिक्त उन्होंने मिथ्याडम्बरों, भेदभाव, ऊँच–नीच इत्यादि कितने ही लोकाश्रित तथ्यों से होने वाली सामाजिक हानियों की और संकेत किए हैं। ऐसे स्थलों पर उनकी वाणी में लोक और भक्ति में अद्भूत समन्वय मिलता है। उनके अनुसार–

ब्राह्मण खतरी बेस सुद, रविदास जन्म ते नाही।
जो चाहई सुबरन कऊ, पावई कमरन माहि।[17]

स्पष्ट है कि संतों की यहाँ मनुष्यता की पहचान से है, चूंकि ब्रह्मा ही तो प्रत्येक में निवास करता है।

मानव जीवन को सामाजिक दृष्टि से ऊँचा उठाने के लिए अनेक बातें रविदास जी ने अपनी वाणी में कही है– काम, क्रोध, लोभ, अहंकार ये पांच मानसिक विकार हैं। रविदास जी कहते हैं– इन पंच विचारों ने एक साथ मिलकर मनुष्य को लूट लिया है। इनके कारण मन, माया, ईर्ष्या एवं अहंकार आदि विकारों में जा फँसता है और वह अपने आप को बड़ा कुलीन, ज्ञानी, शूरवीर, दाता, विद्वान सभी कुछ समझने लगता है, वह मिथ्याभिमानी हो जाता है–

''काम क्रोध मायामद, इन पंचनहु मिलि लूटे।

हम बड़ कवि कुलीन हम पंडित, हम जोगी सन्यासी।
ज्ञानी गुनी सुर हम दाटे, इह बुद्धि कबहु न नासी।''[18]

मानव में पंच विकारों की उत्पत्ति मन की चंचलता के कारण होती है। केवल गुरु ज्ञान एवं प्रभु से इसे काबू किया जा सकता है। वे बार–बार कहते हैं कि जाति–पंक्ति कुछ नहीं बल्कि सभी परमात्मा की संतान है–

जन्म जात मत पूछिए, का जात अरूपात।
रविदास पूत सब प्रभु के कोऊ न जात कुलात।।
मेरी जाति कमीनी पोति, कमीनी ओझा जन्मुह हमारा।
तुम सरनागति राजा रामचंदु कह रविदास चमारा।।[19]

रविदास अपने छोटी जाति स्वीकारते हैं और वे कहते हैं कि हमारा जन्म ओछा है लेकिन राम की शरण में है। संत रविदास ने मानवीय समानता और एकता का प्रतिपादन बड़ी निष्ठा से किया। उनके मतानुसार सभी मनुष्य का प्रतिपादन बड़ी निष्ठा से किया। उनके मतानुसार सभी मनुष्य एक मिट्टी के बने हुए है उनको बनाने वाला ईश्वर सभी में विद्यमान है वह घट–घट वास करता है, वह ऊँट–नीच जाति–पांति ब्राह्मण एवं शूद्र आदि के भेद नहीं मानते। संत रविवाद जाति व्यवस्था नहीं मानते थे और सभी ईश्वर की संतान हैं, सभी समान हैं। इस प्रकार वह राम और रहीम में लेश मात्र भी अंतर नहीं मानते थे। उनकी दृष्टि मानवतावादी थी।

रैदास ने जाति–पाँति के भेदभाव को मिटाकर समस्त मनुष्यों को आपस में मिल–जुलकर रहने का आदेश दिया। उन्होंने हिन्दू समाज के बीच की दरार को पाटने का प्रयास ही नहीं किया बल्कि उन्होंने हिन्दू और मुसलमानों को भी परस्पर सदभाव बरतने की सलाह दी–

मुसलमान सी दोस्ती, हिन्दुअन सी कर प्रीत।
रैदास जोति सब राम की, सब है अपने मीत।।[20]

आडम्बरपरायण पुजारियों की सारी पूजा ही व्यर्थ है क्योंकि वह पवित्र चेतना से अभिमंडित नहीं। इस पूजा में जिस दूध का वह प्रयोग करते हैं। उसे तो थन चूँघते हुए बछड़ा ही जूठा कर चुका है, फल को भोरे ने ही चूस लिया है पानी को मछली ने बिगाड़ दिया है। अब किसी पवित्र फूल एवं सामग्री के अभाव में भगवान की पूजा कैसे की जाए?

इस प्रकार अपवित्र तत्वों से पवित्र भगवान की पूजा कैसे हो? यह रैदास की समझ से बाहर है–

दूधु त बछरै थनहु बिटारियाओ।
फूलु भवरि जलु मीनि बिगारिओ।
माई गोविन्द पूजा कहा लै चरावउ।
अवरु न फूलु अनूपु न पावउ।[21]

इस प्रकार रैदास ने पूजा की औपचारिकता का कितना सहज और स्वाभाविक विरोध कर पुजारी को संचेत किया कि औपचारिकताओं का नहीं मूल भाव का महत्व है, जैसा भगवान पवित्र है, वै ही पवित्र हृदय की भक्ति की वह बिना किसी औपचारिकता के भी स्वीकार कर लेता है। अतः जन–समाज को इस आडम्बर में भरमाने की आवश्यकता नहीं। हिन्दुओं के धर्मस्थान मथुरा, हरिद्वार, काशी, द्वारका आदि उनके लिए किसी काम के नहीं थे, प्रभु तो अंतर में बसा है।

का मथुरा का द्वारका का काशी हरिद्वार,
रविदास खोजा दिल आपना, ते मिलिया दिलदार।[22]

रविदास जी कहते हैं– कर्म के प्रति निष्ठा और ईमानदारी होनी चाहिए। वे कर्म विमुख होकर संसार त्याग कर भक्ति मार्ग अपनाने का संदेश नहीं देते। वे समाज के छोटे कर्म के द्वार उदर–पूर्ति करने वाले व्यक्ति तक के जीवन से उदाहरण ग्रहण करते हैं। चूंकि सच्चा जीवन वहीं पर है।

रविदास सुकरमन करने से नीच उच हो जाय।
करइ कुकरम जो उंच भी तो यहां नीच कहलायें।[23]

निष्कर्ष

इस प्रकार उन्होंने मिथ्याडम्बरों, भेदभाव, ऊँच–नीच इत्यादि कितने ही लोकाश्रित तथ्यों से होने वाली सामाजिक हानियों की ओर संकेत किए हैं। ऐसे स्थलों पर उनकी वाणी में लोक और भक्ति में अद्‌भुत समन्वय मिलता है।

इस प्रकार मध्यकालीन भारत में पैदा होने वाले संतो ने ओर उनके समर्थकों ने जाति–पाति छुआछूत, रूढ़िवादिता, पाखंडों, अंधविश्वास रखने वाले इन संतो के आंदोलन बहुत हितकारी थे, उन्होंने सामाजिक, बुराईयों और छूआछूत का विरोध करते हुए हिन्दुओं को कुमार्ग और विनाशकारी बुराईयों से सावधान किया।

संतों ने भक्ति और धर्म के क्षेत्र में समाज अधिकार और सामाजिक समानता की बात कही है उन्होंने कहा कि बुरे कर्म से ही आदमी बुरा होता है। जाति से कोई बुरा या नीच नहीं होता। उनके लिए समस्त मानवता ही एक जाति है और जब तक जातिवाद नहीं मिटता, भावनात्मक एकता नहीं उत्पन्न हो सकती। उन्होने जाति और वर्ग के भेदभाव को मिटाकर

भावनात्मक एकता की नींव डाली। यह विश्व भ्रातृत्व का एक नवीन संदेश था जिसमें मानवता की सार्वभौमिक स्वातन्त्रय की प्रेरणा मिली और द्वारा सामाजिक और आध्यात्मिक विकास की नींव रखी गई।

सन्दर्भ

1. सुंदरदास श्याम, 'कबीर ग्रंथावली', नागरी प्रचारिणी सभा वारणसी, 1994, 90 10
2. सेंगर इन्द्र, 'कबीर का सच', ग्रन्थ भारती, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2001, पृ० 121
3. लाल एच०, 'मानवाधिकारों के संरक्षक हमारे पुरुष', दिल्ली, पृ० 24
4. सेंगर इन्द्र, पूर्वोक्त, पृ० 125
5. किशोर राज, 'कबीर की खोज', वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2001, पृ 58–59
6. स्नातक विजयेन्द्र, 'कबीर', राधाकृष्णन प्रा०लि०, दिल्ली, 2001, पृ० 144
7. तिवारी रामचन्द्र, 'कबीर ग्रंथावली', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1996, प–264, पृ० 56
8. तिवादी रामचन्द्र, पूर्वोक्त, पद 171 पृ० 39
9. कबीर, 'बीजक', प्रकाश भारती भण्डार, इलाहाबाद, 2011, शब्द 52, पृ० 68
10. कबीर, 'वचनावली', प्रकाश भारती भण्डार, इलाहाबाद, 1988, पृ० 154
11. दास श्याम सुंदर, 'कबीर ग्रन्थावली', नागरी प्रचारिणी सभा वारणासी, 1994, पृ० 32
12. दास श्याम सुंदर, पूर्वोक्त, पृ० 33
13. तिवारी पारसानाथ, 'कबीर वाणी सुधा', रांका प्रकाश, इलाहाबाद, 1978, पृ० 67
14. तिवारी रामचन्द्र, पूर्वोक्त, अंग 12. साखी 16
15. कबीर, 'शब्दावली', नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1994, खण्ड–1, पृ० 197
16. शर्मा बी०पी० ओर पी० नारायण, 'रविदास दर्शन', प्रधान कार्यालय, दिल्ली, 1979, पृ० 123
17. शर्मा बी०पी० और पी० नारायण, 'रविदास दर्शन', प्रधान कार्यालय, दिल्ली, 1979, पृ० 123
18. शर्मा ओ०पी० संत गुरुदास वाणी, साहित्य भवन, इलाहाबाद, 2001, पृ० 15
19. शर्मा देवी प्रसाद, रविदास वाणी (साखी), नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1999, पृ० 121
20. शर्मा देवी प्रसाद, रविदास वाणी (वाणी), पूर्वोक्ति, पृ० 119
21. सिंह एन, 'हिन्दी साहित्य में दलित संघर्ष के उन्नायक', आकाश पब्लिशिंग एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, गाजियाबाद, 2001 पृ० 131
22. मैनी, धर्मपाल, 'रैदास', दिल्ली, 1979, पृ० 39
23. सिंह इन्द्रराज, 'संत रविदास', प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, दिल्ली, 1986, पृ० 101–102
24. गौतम मीरा, 'निर्गुण भक्ति और सामाजिक चेतना', मोनू प्रकाशन, दिल्ली, 2002, पृ० 50